आचारांग सूत्र में अध्यात्म की अवधारणा

- डॉ. अरिहन्त कुमार जैन

जैनधर्म, दर्शनएवं संस्कृति का मूल आधार वीतराग,जिनेंद्रदेव सर्वज्ञकी वाणी है । सर्वज्ञ अर्थात् आत्मदृष्टा ।सम्पूर्ण रूप से आत्मदर्शन करने वाले ही विश्व का समग्र दर्शन कर सकते हैं ।इन सर्वज्ञों द्वारा प्रतिपादित तत्त्वज्ञान, आत्मज्ञान तथा आचार-व्यवहार का सम्यक् परिबोध – 'आगम' शास्त्र या सूत्र के नाम से प्रसिद्ध हैं।इसीलिए हमारे आगम आत्मविद्या अर्थात् अध्यात्म आदि ज्ञान-विज्ञान के अक्षयकोष हैं । भगवान् महावीर की वाणी के प्रतिनिधिरूप में वे हमें आत्मविद्या, तत्त्वज्ञान, आचारशास्त्र, जीवन-विज्ञान आदि ज्ञान-विज्ञान के विविध पहलुओं का सम्यक् बोध कराने में पूर्ण सक्षम हैं । आज जिसे हम 'आगम'या 'गणिपिटक' नाम से अभिहित करते हैं ।

आचारांग, सूत्रकृतांग, स्थानांग, समवायांग, व्याख्याप्रज्ञप्ति, ज्ञाताधर्मकथा, उपासकदशा, अंतकृतदशा, अनुत्तरौपपातिकदशा, प्रश्नव्याकरण, विपाकसूत्र तथा दृष्टिवाद -ये बारह अंग आगम रूप द्वादशांगी साहित्य भगवान् महावीर के निकटतम शिष्य गणधर द्वारा रचित होने के कारण सर्वाधिक मौलिक एवं प्रमाणिक माना जाता है । इसमें आचारांग का स्थान सर्वप्रथम है ।इसमें मूलतः श्रमण-आचार का विवेचन है ।

वस्तुतः जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में आचार की महत्ता निर्विवाद है ।आध्यात्मिक विकास के लिए आचार की प्रथम सीढ़ी सम्मत्तं, सम्मादिट्ठी या सम्यग्दर्शन है । बिना इसके, ज्ञान, विकास का साधक नहीं हो सकता और साधना भी सम्यक् नहीं हो सकती । इसीलिए श्रावक और श्रमण दोनों के लिए सम्यग्दर्शन अनिवार्य रूप से आवश्यक है । उसके बाद ज्ञान स्वतः विकासोन्मुखी हो जाता है ।

आचारांगसूत्र जैनधर्म, दर्शन ,अध्यात्म, तत्त्वज्ञान और आचार का सारभूत एवं मूल आधार माना गया है । आचार्य भद्रबाहु ने आचारांग के विषय में कहा है –

एत्थ य मोक्खोवाओ एत्थ य सारो पवयणस्स । - गाथा 9,10/ आचारांग निर्युक्ति

अर्थात् आचारांग में मोक्ष के उपाय (आचार) का प्रतिपादन किया गया है और यही (मोक्षोपाय/आचार) जिनप्रवचन का सार है ।यह मुक्ति महल में प्रवेश करने का भव्य द्वार है। आचारांग के माध्यम से श्रमणधर्म और अध्यात्मका यथार्थ स्वरूप समझा जा सकता है ।

आचारांग का प्रतिपाद्य विषय और अध्यात्म -

आचारांग में मूलतः आचार और अध्यात्म का प्रमुखता से प्रतिपादन है । इसके **'शस्त्रपरिज्ञा'** नामक प्रथम अध्ययन के प्रथम उद्देशक में आत्मा का अस्तित्त्व, उसका भवान्तर में गमनागमन और गमनागमन के कारणों की मीमांसा की गयी है । उक्त मीमांसा करते हुए आत्मा के शुद्ध स्वरुप और कर्मबंध के कारणों का निरूपण किया गया है ।

आचारांग में जगह-जगह यह स्पष्ट किया गया है कि कर्मबंध या मोक्ष का मुख्य आधार बाह्य क्रियाओं पर उतना नहीं है जितना आत्मा कि अंतर-वृत्तियों पर । अतएव अंतर-वृत्तियों के संशोधन पर मुख्य ध्यान देना चाहिए । अहिंसा की आराधना के लिए भी अंतर-वृत्तियों में अहिंसा व्याप्त हो जानी चाहिए । बाहर से अहिंसक रहने पर भी वृत्तियों में हिंसा हो सकती है और वह हिंसा कर्म बंधन का कारण हो जाती है । इसलिए वृत्तियों में अहिंसा, सत्य आदि गुणों को रमाने का प्रयत्न आवश्यक है ।

दूसरे अध्ययन में **'लोकविजय'** का वर्णन है । जब तक साधक बाह्य पदार्थों और बाह्य संबंधों में उलझा रहता है तब तक वह आत्मा के साक्षात्कार और उसकी अनुपम विभूति से वंचित रहता है । आत्मदर्शन के लिए बाह्य संसार – धन-धान्य, माता-पिता, स्त्री आदि परिवार – की ममता का परिहार करना आवश्यक होता है । अतएव इस अध्ययन में सांसारिक वस्तुओं से ममता का सम्बन्ध तोड़ लेने का मर्मस्पर्शी उपदेश दिया गया है ।

वस्तुतः त्याग मार्ग में चलते हुए अनेक इष्ट-अनिष्ट संयोगों में से गुज़रना होता है । अतः साधक को उनसे विचलित नहीं होना चाहिए । इसी के लिए तृतीय अध्ययन**'शीतोष्णीय'** में सुख-दुःख सहिष्णु बनाने की – समभाव रखने की शिक्षा प्रदान की गई है । इष्ट –अनिष्ट में समभाव रखना ही स्थितप्रज्ञता है । इसकी आराधना, साधना का उपयोगी अंग है ।

हमारा साध्य मोक्ष है अतः मोक्ष और मोक्ष के साधनों के प्रति जब तक पर्वत कि भाँति अडोल श्रद्धान नहीं होता तब तक उनकी ओर हार्दिक प्रवृत्ति नहीं होती, अतः श्रद्धा के दीपक को प्रबल झंझावात में भी सुरक्षित रख सकने कि शक्ति साधक में पैदा होनी चाहिए । यह **'सम्यक्त्व'**

नामक चतुर्थ अध्ययन का निरूपणीय विषय है । इसके पाँचवे अध्ययन में चारित्र को लोक का सार (**लोकसार**)कहा गया है और इसीलिये **'धूत'** नामक छठे अध्ययन में कर्म-मैल को धो डालने के उपायों का दिग्दर्शन कराया गया है । इसमें यह भी बताया गया है कि दीक्षा लेने के बाद भी पूर्व संस्कार जागृत होकर साधक को विचलित करने का प्रयास करते हैं, अतः साधक को इस विषय में सावधान रहना चाहिए । उपयोगपूर्वक देह-दमन, अनन्य भक्ति, समभाव आदि कर्म-विनाश के उपाय हैं । सप्तम **'विमोह'** या 'विमोक्ष' अध्ययन विच्छिन्न हो गया अतः उसके विषय में किसी प्रकार की कल्पना नहीं की जा सकती । **'उपधानश्रुत'** नामक आठवें अध्ययन में कुसंग-परित्याग, प्रलोभनविजय, संकल्पबल की सिद्धि, प्रतिज्ञापालन, स्वादनिग्रह तथा समाधिमरण का वर्णन किया गया है ।

नौवें अध्ययन**"महापरिज्ञा"** में साधना-जीवन के आदर्श के रूप में स्वयं भगवान् की साधक अवस्था का वर्णन किया गया है । साधना के मार्ग में आने वाले परीषह-उपसर्गों में कैसी सहनशीलता रखते हुए संयम कि साधना करनी चाहिए यह बताना ही इस अध्ययन का अभिधेय है ।

<u>आचारांग में अध्यात्म</u> :

आचारांग का मुख्य उद्देश्य यही है कि व्यक्ति चारित्र धर्म की साधना के द्वारा जीवन के परम लक्ष्य मुक्ति को प्राप्त कर सके । जैन धर्म की यह स्पष्ट मान्यता है कि जब तक आचार शुद्धि नहीं होगी तब तक चित्त- शुद्धि संभव नहीं है और चित्त शुद्धि के अभाव में आत्म शुद्धि तथा आत्म शुद्धि के बिना मुक्ति की प्राप्ति भी संभव नहीं है । तीव्रतम (अनन्तानुबन्धी) क्रोध, मान, माया, लोभ - इन कषायों के निरोधसे सम्यक् दर्शन की और योग-निरोध रूप चारित्र से मोक्ष की प्राप्ति होती है , इस प्रकार चारित्र जैन साधना का अथ और इति दोनों ही है ।

इस प्रकार आचारांग अध्यात्म और तत्त्वज्ञान का प्रतिपादक ग्रन्थ है । तदनुसार इसका प्रतिपाद्य विषय वही है, जो आत्मा और तत्त्व से सम्बन्ध रखता है । अतः इस ग्रन्थ का आरम्भ ही आत्मा और उसके पुनर्जन्म सम्बन्धी विचारणा को लेकर हुआ है ।

आचारांग के प्रारंभ में ही अर्थात् प्रथम अध्ययन के प्रथम वाक्य में ही यह बतलाया गया है कि –**सुयं मे आउसं ! तेणं भगवया एवमक्खायं – इहमेगेसिं नो सण्णा भवइ, तंजहा –**

पुरत्थिमाओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि,दाहिणाओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि,

पच्चत्थिमाओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि,उत्तराओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि,

उड्ढाओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि,अहे वा दिसाओ आगओ अहमंसि,

अण्णयरीओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि,अणुदिसाओ वा आगओ अहमंसि ।

अर्थात् आयुष्मान् ! मैंने सुना है , भगवान् ने यह कहा – इस जगत में कुछ (मनुष्यों) को यह संज्ञा नहीं होती , जैसे – मैं पूर्व दिशा से आया हूँ , अथवा दक्षिण दिशा से आया हूँ, अथवा पश्चिम दिशा से आया हूँ, अथवा उत्तर दिशा से आया हूँ, अथवा उर्ध्व दिशा से आया हूँ, अथवा अधो दिशा से आया हूँ, अथवा किसी अन्य दिशा से आया हूँ, अथवा अनुदिशा दिशा से आया हूँ।

तात्त्पर्य यह है कि इस संसार में कुछ लोगों को भान नहीं होता कि मैं पूर्व से आया हूँ या दक्षिण से आया हूँ अथवा किस दिशा य विदिशा से आया हूँ अथवा ऊपर से या नीचे से आया हूँ? यहाँ प्रश्न है कि - **अत्थि में आया उववाइए, नत्थि में आया अववाइए ।**

के अहं आसी के वा इओ चुओ इहपेच्चा भविस्सामि ।। १/१/१/३ ।।

इस जीवन के पूर्व मेरा अस्तित्व था या नहीं अथवा इस जीवन के पश्चात् मेरी सत्ता बनी रहेगी या नहीं ? मैं क्या था और मृत्यु के उपरान्त किस रूप में होऊंगा ? यही अपने अस्तित्व का प्रश्न मानवीय जिज्ञासा और मानवीय बुद्धि का प्रथम प्रश्न है, जिसे सूत्रकार ने सर्वप्रथम उठाया है । मनुष्य के लिए मूलभूत प्रश्न अपने अस्तित्व या सत्ता का ही है । अध्यात्म और नैतिक चेतना का विकास भी इसी अस्तित्व-बोध या स्वरूप-बोध पर आधारित है । सूत्रकार ने कहा है **–सोऽहं से आयावाई लोगावाई कम्मवाई किरियावाई।।(१/१/१/४-५)** अर्थात् जो इस 'अस्तित्व' या स्व-सत्ता को जान लेता है - वही आत्मवादी है, लोकवादी है, कर्मवादी है और क्रियावादी है । मनुष्य के लिए मूलभूत और सारभूत तत्त्व उसका अपना अस्तित्व ही है और सत्ता या अस्तित्व के इस मूलभूत प्रश्न को उठाकर आगमकार ने अपनी मनोवैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि का परिचय दिया है ।

इसीलिए आचारांग सूत्र का प्रारंभ ही अस्तित्त्वबोध रूपआत्म-जिज्ञासा से होता है ।जैसे **'अथातो ब्रम्हजिज्ञासा'** वेदान्त का मूल सूत्र है , वैसे ही **'अथातो आत्मजिज्ञासा'** जैन दर्शन का मूल सूत्र है ।जिज्ञासा मानव-मन की सहज प्रवृत्ति है । अतः उसके अंतर्मन में यह प्रश्न उठे बिना नहीं रहता कि **'कोऽहं कीदृग् कुतः आयातः'** अर्थात् मैं कौन हूँ , मैं कैसा हूँ और कहाँ से आया हूँ ।

आत्मा है , वह नित्यानित्य है, वह कर्त्ता और भोक्ता है । बंध हैं और उसके हेतु हैं । मोक्ष है और उसके हेतु हैं । ये सब आचार शास्त्र के आधारभूत तत्त्व हैं ।

अध्यात्म के विषय में विचार करते हुए आचारांग में कहा है - **जे अज्झत्थं जाणइ, से बहिया जाणइ । जे बहिया जाणइ, से अज्झत्थं जाणइ ।(१/१४७)**अर्थात् जो अध्यात्म को जानता है, वह बाह्य को जानता है । जो बाह्य को जानता है , वह अध्यात्म को जानता है ।

आचारांग में उल्लिखित भगवान् महावीर द्वारा प्रयोग में लाये गए कुछ अध्यात्म साधना के सूत्र इस प्रकार हैं –

- **गच्छइ णायपुत्ते असरणाय ।**[1] इसका तात्पर्य यह है - अशरण की भावना । अध्यात्म दूसरों की शरण में जाने की अनुमति नहीं देता । अध्यात्म का पहला लक्षण है अपने आप में अपनी शरण की खोज ।
- **एगत्तगए पिहियच्चे ।**[2] अध्यात्म का दूसरा लक्षण है – अकेलापन । आशय यह है कि अध्यात्म सबके बीच रहने पर भी अपने आपको अकेला अनुभव करने की दृष्टि, मति और धृति देता है ।
- **से अहिण्णायदंसणे संते ।**[3]यहाँअध्यात्म का एक लक्षण सम्यग्दर्शन भी बताया है ।भगवान् विश्व के सभी पदार्थों, विचारों और घटनाओं को अनेकांत दृष्टि से देखते थे । इसलिए सत्य उन्हें सहजभाव से उपलब्ध हो गया । अध्यात्म का अन्य लक्षण है – शान्ति । जिसे सत्य उपलब्ध होता है , उसे अशांति नहीं होती ।
- **राइं दिवं पि जयमाणे, अप्पमत्ते समाहिए झाति ।**[4]अध्यात्म का एक लक्षण है - अप्रमाद (सतत जागरण) तथा समाधि की प्राप्ति ।

<u>आत्मा के स्वरूप का विश्लेषण :</u>

शरीर के होने पर भी आत्मा रहती है और उसके छूट जाने पर भी रहती है । फिर जीवन की आकांक्षा और मृत्यु का भय क्यूँ होता है ? भगवान् ने इस रहस्य को देखा और बताया कि आत्मा

---

[1]आयारो : 9/1/10

[2]आयारो : 9/1/11

[3]आयारो : 9/1/11

[4]आयारो : 9/2/4

में आकांक्षा नहीं है। उसकी विस्मृति ही आकांक्षा है। आत्मा में भय नहीं है। उसकी विस्मृति ही भय है। भगवान् की यह ध्वनि आज भी प्रतिध्वनित हो रही है –**'सव्वओ पमत्तस्स भयं',सव्वओ अप्पमत्तस्स णत्थि भयं'**–'प्रमत्त को सब ओर भय है ,'अप्रमत्त को कहीं से भी भय नहीं है ।[5]

वस्तुतः आचारांग की साधना अप्रमत्तता की साधना है और यह अप्रमत्तता अपनी चित्त वृत्तियों के प्रति सतत जागरूकता है। चित्त वृत्तियों का दर्शन, सम्यक् दर्शन है , स्व-स्वभाव में रमना है। इसीलिए अप्रमाद का पहला सूत्र है – आत्म-दर्शन। भगवान् ने कहा –**संपिक्खिए अप्पगमप्पएणं**[6] अर्थात् आत्मा से आत्मा को देखो । वे कहते हैं –**जे अणण्णदंसी, से अणण्णारामे,जे अणण्णारामे, से अणण्णदंसी ।(१/२/१७३)**यहाँअनन्य दर्शन का अर्थ आत्म दर्शन है ।अर्थात् जो आत्मा को देखता है, वह आत्मा में रमता है ; जो आत्मा में रमण करता है, वह आत्मा को देखता है ।वासना और कषाय – ये आत्मा से अन्य है। आत्मा को देखने वाला अन्य में रमण नहीं करता ।वस्तुतःआत्मा को जानना ही सम्यक् ज्ञान है, आत्मा को देखना ही सम्यक् दर्शन है और आत्मा में रमण करना ही सम्यक् चारित्र है। यही मुक्ति का मार्ग है।

समयसारमें भी आचार्य कुन्दकुन्द कहते हैं–

जीवादिसद्दहणं समत्तं तेसिमधिगमो णाणं।

रायादिपरिहरणं चरणं एसो दु मोक्खपहो ।। १५५ ।।

अर्थात् जीवादि पदार्थों का श्रद्धान करना सम्यक्त्व है उनका ठीक-ठीक जानना ज्ञान है और रागादिका त्याग करना चारित्र है। यह सम्यक्त्व ज्ञान तथा चारित्र ही मोक्ष का मार्ग है।

आत्मा के स्वरूप या स्वभाव का विवेचन करते हुए सूत्रकार ने स्पष्ट रूप से कहा है –

जे आया से विन्नाया, जे विन्नाया से आया।

जेण वियाणइ से आया। तं पडुच्च पडिसंखाये ।। १/५/५ ।।

इस प्रकार वह ज्ञान को आत्म-स्वभाव या आत्म-स्वरुप बताता है। जहाँ आधुनिक मनोविज्ञान चेतना के ज्ञान, अनुभूति और संकल्प ऐसे तीन लक्षण बताता है , वहां आचारांग केवल आत्मा के ज्ञान लक्षण पर ही बल देता है।

---

[5]आयारो, ३ / ७५

[6]दशवैकालिक चूलिका २/११

आचारांग के अनुसार मनुष्य संकल्प करने एवं उसके अनुरूप आचरण करने में स्वतंत्र है। इसलिए वह अपने बंधन के लिए स्वयं उत्तरदायी है। वास्तव में यह आत्मा मकड़ी कि भाँति दुखों का जाल बिछाकर स्वयं ही उलझती है अर्थात् स्वयं ही कर्मों को उत्पन्न करती है और उससे आवृत्त होती है , तथा स्वयं ही तप-त्याग, सत्य-संयमानुष्ठान आदि के द्वारा कर्म-प्रवाह को रोक देती है और पूर्वबद्ध कर्मों को छिन्न-भिन्न कर शुद्ध हो जाती है।[7]न केवल आचारांग अपितु सम्पूर्ण अध्यात्मवादी दर्शन समवेत स्वर से स्वीकार करते हैं कि बंधन सदा बंधन नहीं रह सकते। वह तोड़ा जा सकता है और खोला जा सकता है।

आचारांग में कहा है कि **'सन्तिपाणा पुढो सिया'**[8] प्रत्येक प्राणी आत्मा की (स्वतंत्र) सत्ता है और साथ ही प्रत्येक आत्मा अनंत शक्ति संपन्न है। यदि वह चाहे तो कर्म कि परतंत्रता को तोड़कर स्वतंत्र हो सकती है।

सामान्यतया मनुष्य अपने उत्थान के लिए बाहरी तत्त्वों कि अपेक्षा रखता है। आचारांग हमें सिखाता है कि आध्यात्मिक उत्थान के लिए बाह्य जगत में भटकना आवश्यक नहीं है। वह कहता है कि सच्चा मित्र तो भीतर ही बैठा है। उसका साक्षात्कार करने के लिए हे परम चक्षुष्मान् पुरुष ! तुझे पुरुषार्थ करना चाहिए।[9]

आचारांग में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि सत्य का साक्षात्कार उसी ने किया है जो (अनुकूल-प्रतिकूल बाधाओं से) अभिभूत नहीं होता, जो अभिभूत नहीं होता वही निरवलम्ब होने में समर्थ होता है।[10]वास्तव में आत्मोत्थान वही कर सकता है जो पुरुषार्थी है।साधक को अपनी पौरुषता का भान कराते हुए आचारांग में कहा है कि -

पुरिसा ! तुममेव तुमं मित्तं किं बहिया मित्तमिच्छसि ?[11]

हे पुरुष ! तू स्वयं ही अपना मित्र है। फिर तू अपने (आत्मस्वरूप) से बाहर मित्र कहाँ ढूढता है ? अर्थात् क्यूँ उनकी अपेक्षा रखता है ?

इससे स्पष्ट है कि आचारांग इस बात में विश्वास नहीं करता कि परमात्मा किसी का उत्थान-पतन करता है। प्रत्येक जीवात्मा स्वयं ही अपने उत्थान-पतन के लिए उत्तरदायी है।

---

[7]आचारांग १/३/२

[8]आचारांग १/२/३-७

[9]आचारांग १/५/२

[10]आचारांग १/५/६ पर शी. टी. पत्रांक २०५

[11]आचारांग सूत्र १/३/३

जब वह स्वस्वभाव दशा में रमण करती है तब उसका उत्थान होता है और जब वो विभाव दशा में रमण करती है, तब उसका पतन होता है। बंधन और मुक्ति उसी पर आश्रित है। इसलिए आचारांगकार कहते हैं कि **'बांध पमोक्खो सुज्झ अज्झत्थेव'** बंध और मोक्ष तेरे अपने अध्यवसाय पर निर्भर हैं। अतः इस सत्य को सम्यक्तया जानकरजितेन्द्रिय होकर परिव्रजन करना चाहिए।

इस प्रकार आचारांग में अहिंसा , सत्य, त्याग, संयम, तप, अनासक्ति इत्यादि का तलस्पर्शी विवेचन है और इसमें वे सब तत्त्व विद्यमान हैं जो आध्यात्मिक जीवन की सर्वतोमुखी प्रगति के लिए अनिवार्य है।

<u>वर्तमान में विश्व का अध्यात्म :</u>

जैनधर्म के अध्यात्म के अलावा यदि देखा जाय तोएक समय ऐसा था जिसमें अध्यात्म, आध्यात्मिक प्रयोग, अंतरात्मा की आवाज़, आत्मसाक्षात्कार आदि शब्द गूढ़ एवं अलौकिक लगते थे। अनेक लोगों ने इन शब्दों का प्रयोग करके स्वयं के विषय में एक रहस्य निर्मित कर लिया था और लोग भ्रमित थे, किन्तु मूलतः अध्यात्म भी मानव के विकासक्रम से बाहर की बात नहीं है। इसे मनुष्य ने ही जन्म दिया है। मनुष्य ने अपने स्वयं के अस्तित्व को और अपने आस-पास के जगत को समझने के लिए जो अनेक निपुणताएं अर्जित की हैं, अध्यात्म भी उनमें से एक है।

आज अध्यात्म का स्वरूप, स्व-अस्तित्व के केंद्र को समझने की कला हो जाने से यह विज्ञान में, विशेष रूप से मनोविज्ञान और मनोविश्लेषण के क्षेत्र में भी आ गया है।इस क्षेत्र में भारत के रमण महर्षि जे। कृष्णमूर्ती और ओशो जैसे अनेक आध्यात्मिक पुरुषों ने इसमें महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। विशेष रूप से बीसवीं सदी के उत्तरार्ध में प्राच्य ज़ेन गुरु डॉ. डी.टी. सुजुकी ने विविध देशों के मनोविश्लेषक विशेषज्ञों से संवाद किया है। इनमें प्रमुख रूप से कार्ल जुंग, एरिक फ्राम और रिचर्ड डी. मार्टिनो इत्यादि का उल्लेख किया जा सकता है। इनके द्वारा जो संवाद साधा गया था, उससे अध्यात्म के विविध पहलुओं पर काफ़ी प्रकाश पड़ा है।

अध्यात्म, मनुष्य के एहसास के परे जाकर, अवचेतन के महासागर में अकेले, एकाकी रूप से की गयी यात्रा को कहते हैं। यह इतना व्यक्तिगत होता है कि उससे प्राप्त अनुभवों को सार्वजनीन रूप नहीं दिया जा सकता। वे बेहद व्यक्तिगत एवं भिन्न प्रकार के होते हैं, अध्यात्म का मज़ाक उड़ाना आसान होता है। मज़ाक उड़ाया भी गया है, परन्तु यह ठीक से समझ लेना चाहिए कि मनुष्य की 'मनुष्य' के रूप में एक महत्त्वपूर्ण ज़रूरत है। मनुष्य को उसकी अंतर्यात्रा के लिए अध्यात्म और बाह्य यात्रा के लिए विज्ञान, यही बातें आवश्यक रह जायेंगी।

आधार ग्रन्थ सूची :

- आचारांग सूत्र, स. युवाचार्य श्री मधुकर मुनि, श्री आगम प्रकाश समिति, ब्यावर, राजस्थान
- आचारंग का नीतिशास्त्रीय अध्ययन, साध्वी (डॉ.) प्रियदर्शना जी
- आयारो, सं. मुनि नथमल, जैन विश्व भारती प्रकाशन, लाडनूं
- श्री आचारांग सूत्रम् – प्रथम श्रुतस्कंध , अनु. पं. मुनिश्री सौभाग्यमल जी महाराज, सं. पं. बसंतीलाल नलवाया, 'न्यायतीर्थ', प्रका. श्री जैन साहित्य समिति, नयापुरा, उज्जैन
- आचारांग सूत्र : एक अध्ययन (१९८७)– डॉ. परमेष्ठीदास जैन, पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी
- श्रमण महावीर , आ. महाप्रज्ञ, जैन विश्वभारती, लाडनूं
- मूलाचार का समीक्षात्मक अध्ययन – डॉ. फूलचन्द जैन प्रेमी, पार्श्वनाथ शोध संस्थान, वाराणसी

प्रस्तुतकर्ता –

डॉ. अरिहन्त कुमार जैन
सहायक आचार्य,
जैन विद्या एवं तुलनात्मक धर्म तथा दर्शन विभाग
जैन विश्वभारती संसथान (मान्य विश्वविद्यालय)
लाडनूं, राजस्थान - 341306

Mob. +91- 9967954146

email – drarihantpj@gmail.com